प्रकाशित: 23 अगस्त 2017 को नेशनलिस्ट ऑनलाइन डॉट कॉम में प्रकाशित -

शाहबानो ने खोया-शायराबानो ने पाया

राजीव सचान

तीन तलाक पर सुप्रीम कोर्ट का फैसला केवल यही नहीं कहता कि तलाक का यह तरीका असंवैधानिक और मुस्लिम महिलाओं के लिए अन्यायपूर्ण है, बल्कि परोक्ष तौर से यह भी रेखांकित करता है कि तीन तलाक की पैरवी करने वाले लोग मुस्लिम समाज को पिछड़ेपन की गिरफ्त में जकड़े रहकर इस समाज का अहित ही कर रहे थे। तीन तलाक पर सुप्रीम कोर्ट को फैसला देने की जरूरत इसलिए पड़ी, क्योंकि तीन तलाक का शिकार इंदौर की शाहबानो 1985 में जब गुजारा भत्ता की मांग को लेकर सुप्रीम कोर्ट पहुंचीं और कोर्ट ने उनके पक्ष में फैसला सुनाया तो उस समय की सरकार इस फैसले को खारिज करने पर तुल गई। शाहबानो के पति का तर्क था कि मुस्लिम पर्सनल लॉ के तहत वह केवल मेहर की रकम देने को बाध्य है और वह उसे दे चुके है। सुप्रीम कोर्ट ने इस तरह के तर्क नहीं माने और उसने शाहबानो को गुजारा भत्ता देने के आदेश दिए। मुस्लिम समाज के नेताओं ने इसे अपने पारिवारिक और धार्मिक मामलों में दखल माना। उन्होंने विरोध जताना शुरू किया। पता नहीं कैसे तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी इस नतीजे पर पहुंच गए कि मुस्लिम नेताओं और मौलवियों-मौलानाओं की बात सही है। उन्होंने एक कानून लाकर सुप्रीम कोर्ट के फैसले को खारिज कर दिया। राजीव गांधी के इस फैसले के खिलाफ कांग्रेस के भीतर से सिर्फ एक सशक्त आवाज उठी। यह थी आरिफ मोहम्मद खान की। राजीव गांधी को आरिफ की असहमति रास नहीं आई और उन्हें मंत्रिपरिषद से बाहर होना पड़ा और उधर सुप्रीम कोर्ट का फैसला निष्प्रभावी होने का परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम समाज ने सामाजिक सुधारों और साथ ही तलाकशुदा महिलाओं की बेहतरी के बारे में सोचना ही बंद कर दिया। यह अकल्पनीय है कि 31 साल पहले शाहबानो के साथ नाइसांफी में सत्तापक्ष समेत कई राजनीतिक दल शामिल थे। यदि आज किसी अन्य दल की सरकार होती तो सुप्रीम कोर्ट का फैसला कुछ भी होता, अधिकांश राजनीतिक दल शायद वैसा ही व्यवहार करते जैसा उन्होंने 1985-86 में किया था। इस पर गौर करें कि कांग्रेस समेत अन्य विपक्षी दल मोदी सरकार

के इस मत से सहमत नहीं थे कि तीन तलाक बंद होना चाहिए और सुप्रीम कोर्ट को इस मामले में दखल देना चाहिए। कांग्रेस के नेता और वकील कपिल सिब्बल ने तीन तलाक के समर्थन में यहां तक दलील दी थी कि यह 14 सौ साल पुरानी प्रथा है और यह आस्था का वैसा ही मामला है जैसे हिंदू यह मानते है कि राम का जन्म अयोध्या में हुआ था। तीन तलाक के मसले को आस्था से जोड़ने वाले यही कपिल सिब्बल अब भले ही सुप्रीम कोर्ट के फैसले की सराहना कर रहे हों, लेकिन जब इस मामले की सुनवाई हो रही थीं तो उनकी दलीलें मौलानाओं को मात देने वाली थीं। चूंकि तथाकथित सेक्युलर राजनीतिक दलों ने 1986 में शाहबानो को गुजारा भत्ता देने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को निष्प्रभावी कर दिया इसलिए वह इंसाफ हासिल किए बगैर सालों तक गुरबत भरी जिंदगी बिताने के बाद चल बसीं। उनके पति वकील थे, लेकिन पत्नी से मुकदमा हारने के अपमान में उन्होंने दोबारा वकालत नहीं की। 1985-86 में जो शाहबानो को हासिल नहीं हुआ वह 2017 में शायराबानो और उनकी जैसी यानी तीन तलाक का शिकार अन्य अनेक महिलाओं को हासिल होने जा रहा है। तीन तलाक पर आए इस फैसले का सबसे अधिक श्रेय शायरा बानो को ही जाता है। उत्तराखंड के काशीपुर की शायराबानो को 2015 में पति ने जबरन मायके भेजा और फिर कुछ वक्त बाद उन्हें तीन तलाक सुना दिया। 2016 में वह न्याय मांगने सुप्रीम कोर्ट पहुंचीं। उन्होंने अपनी याचिका में तीन तलाक के साथ-साथ बहुविवाह और निकाह हलाला को भी चुनौती दी थी। कुछ समय बाद ऐसी ही कुछ और याचिकाएं सुप्रीम कोर्ट पहुंचीं। विडंबना यह रही कि मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड तीन तलाक को गलत तो मानता रहा, लेकिन उसे अमान्य करने के लिए तैयार नहीं हुआ। उसने वैसा ही रूढ़िवादी रवैया अपनाया जैसे एक समय विधवा विवाह या फिर हिंदू कोड बिल के मामले में कुछ हिंदू संगठनों ने अपनाया था। हालांकि सुप्रीम कोर्ट ने फिलहाल तीन तलाक पर ही फैसला सुनाया है, लेकिन यह उम्मीद की जाती है कि यह फैसला मुस्लिम समाज के साथ अन्य समाजों को भी सुधारों की ओर अग्रसर करेगा। किसी को भी इस मुगालते में नहीं रहना चाहिए कि केवल मुस्लिम समाज को ही महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए आगे बढ़ने की जरूरत है। कमोबेश ऐसी ही जरूरत अन्य समाजों को भी है, क्योंकि अपने देश में महिलाओं की स्थिति कोई बहुत अच्छी नहीं। लिंग अनुपात में असंतुलन से लेकर महिलाओं के साथ होने वाले अपराध यही बताते है कि उन्हें वह सम्मान और आदर हासिल नहीं जिसकी कम से कम इस 21वीं सदी में वे हकदार है। किसी देश का समाज कितना सभ्य है, इसका पता वहां की महिलाओं की स्थिति से कहीं बेहतर ढंग से चलता है। महिलाओं की स्थिति के लिए समाज के रुख-रवैये के साथ-साथ उसे सबसे अधिक प्रभावित करने वाली राजनीति जिम्मेदार है। आजादी के पहले और

एक हद तक आजादी के कई वर्षों बाद तक भी समाज सुधार राजनीति का हिस्सा था, लेकिन जैसे-जैसे वोट बैंक की राजनीति ने जड़ें जमाईं, राजनीतिक दलों ने समाज सुधार के एजेंडे को अपनी राजनीति से बाहर कर दिया। शायद ही कभी किसी दल के घोषणापत्र में किसी सामाजिक कुरीति के खिलाफ कुछ लिखा मिलता हो। बहुत पुरानी बात नहीं जब कई नेता उन खाप पंचायतों के साथ खड़े दिख रहे थे जो महिलाओं के खिलाफ अजीबोगरीब फैसले सुनाने के लिए जानी जाती है। यह भी चंद दिनों पहले की बात है कि घूंघट के गुण गाए जा रहे थे। अभी हाल में जब उत्तर प्रदेश में लड़कियों को छेड़खानी से बचाने के लिए एंटी रोमियो दस्ता सक्रिय हुआ तो तमाम कथित विद्वान इस चिंता में दुबले होते दिखे कि आखिर बेचारे रोमियो ने क्या किया है? यह सही है कि आज करीब-करीब सभी राजनीतिक दल तीन तलाक खारिज करने के सुप्रीम कोर्ट के फैसले को सही बता रहे है, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि सामाजिक सुधार उनकी प्राथमिकता से बाहर है। वे देश बनाने की बड़ी-बड़ी बातें करते है, लेकिन यह समझने से इन्कार करते है कि अगर समाज का सही तरह से निर्माण हो जाए तो देश अपने आप बन-संवर जाएगा।

[लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडीटर है]